International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 7 Issue 8 Ver. I || August. 2018 || PP 91-93

बाल शिक्षा में कला की अवधारणा

डॉ0 अलका तिवारी
एसोसिएट प्रोफेसर
चित्रकला विभाग
एन0ए0एस0 कॉलेज, मेरठ
समवन्यक–ललित कला विभाग
चौ0 चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

सारांश–
मानव सामाजिक प्राणी है। कला समाज की रीढ़ है। समाज में बालक में नवीन भावों को जागृत करना तथा उन भावों पर अवलम्बित, उनमें द्वेष की भावना, कलात्मक सृजन किसी भी उपदान का यथावत् चित्रण नहीं हुआ करता है। वह तो बालक के अन्तः और वाह्य भावनात्मक उद्वेलन, चिन्तन, निरीक्षण, संस्कार आदि का सूत्र होता है। बालक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में इनसे प्रभावित होता रहता है।

प्रस्तावना–

कला की कहानी मानव के विकास के साथ–साथ ही शुरू होती है। सृष्टि के आरम्भ काल से ही मानव का कला से सम्पर्क स्थापित हुआ और उसके विकास के साथ–साथ कला का भी विकास होता गया।

बच्चों में काल्पनिक रचनात्मक गतिविधि की प्रतिक्रिया कला है। यह व्यक्ति और समाज के आदान–प्रदान से प्रभावित होती है। इसमें हर दशा में व्यक्तिगत और सामाजिक एकीकरण होता है। यह सार्वभौमिक सामाजिक वास्तविकता है। यह व्यक्ति की रचनात्मक इच्छा और उत्साह की अभिव्यक्ति है जिसमें समस्त परम्परा और सभ्यता का परिणाम और शक्ति निहित है। इस प्रकार बच्चों की कला के द्वारा हम आदर्श संसार की झलक पाते हैं।

बच्चों के मन में हर समय कुछ न कुछ भावनाएं उठती रहती है। यह स्वाभाविक है कि ये भावनाएं किसी न किसी तरह प्रकट होती रहें। इन्हें कोई न कोई निकास का रास्ता चाहिए ही।

कला–प्रवृत्तियों द्वारा बच्चे की ये भावनाएं सफलतापूर्वक प्रकट हो जाती हैं। अच्छी शिक्षा का यह काम है कि योजना ऐसी बने, जिससे बच्चे की ये भावनाएं सुन्दर और स्वस्थ रूप लेकर बाहर निकलें।

हम यही कहना चाहते हैं कि कला–प्रवृत्तियां शिक्षा में केवल जरूरी स्थान ही न पायें, बल्कि शिक्षा की बुनियाद ही कला होनी चाहिए। आज जबकि हम मनुष्य के पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए शिक्षा का ढांचा तैयार करना चाहते हैं, जबकि हम व्यक्ति को सच्ची सामाजिक दृष्टि देना चाहते हैं और 'दबाव और तनाव' निकाल देना चाहते हैं, तो शिक्षा का ढांचा भी ऐसा होना चाहिए, जो हर बालक को इस प्रकार तैयार करें, जिससे उसके आन्तरिक जीवन में तृप्ति का बोध हो और उसका अपनी अन्तः प्रकृति के साथ और इसलिए विश्व प्रकृति के साथ ऐकात्म्य हो।

भाषा की भाँति ही चित्रकला भी उनकी अभिव्यंजना का एक सशक्त माध्यम बन सकती है।

पहले के दिनों में संरक्षक यदि अपने बच्चों को अभ्यास पुस्तकों पर कुछ खींचते और ड्राइंग बनाकर खराब करते देखते थे तो व उन्हें फटकारते थे। इसे वे अच्छा नहीं समझते थे, क्योंकि वे उस समय ऐसा सोचते थे कि लाभप्रद जीवन बनाने में कला व्यर्थ का विषय हैं। वे शिक्षात्मक विषय जैसे गणित, अंग्रेजी, इतिहास, भूगोल आदि की एकाग्रता पर बल देते थे और कला के प्रति विरोधी थे। परन्तु आज परिस्थिति बदल चुकी है। प्रत्येक शिक्षित आधुनिक घरों के संरक्षक इस बात के इच्छुक रहते है कि उनके बच्चे चित्रण कर उन्हें रंगों से भरें और कला प्रतियोगिताओं में भी पुरस्कार प्राप्त करें। यद्यपि हम लोगों के बालकाल में स्कूलों में कला विशेष की कोई व्यवस्था नहीं थी।

आज कला केवल समृद्ध परिवारों के बच्चों में ही नहीं बल्कि गरीब लोगों जैसे किसानों और मजदूरों के बच्चों के बीच भी काफी लोकप्रिय विषय है। मैं उन दो भाईयों कबीरूल (4) तथा सबीरूल (2) को जानती हूँ जो रूई धुनने वाले के बेटे है और जिन्होंने गांव के कला विद्यालय में शिक्षा की उनके चित्रों की प्रदर्शनी यूनेस्को में भी प्रदर्शित हुई। आज समाज में बाल कला के महत्व को समझा जाने लगा है शिक्षक अभिभावक सभी बालकों में कला को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं यही नहीं अपितु कलकत्ता की कुछ उपकारी संस्थायें जैसे रामकृष्ण मिशन, विधान शिशु उद्यान, नेहरू संग्राहलय, अकादमी ऑफ फाइन आर्ट्स तथा बिड़ला अकादमी ऑफ फाइन आर्टस एण्ड कल्चर बालकों की कला शिक्षा योजना में आगे आ गयी हैं। व्यावसायिक प्रतिष्ठान भी बाल कला प्रतियोगिताओं एवं प्रदर्शनियों का आयोजन करने लगे हैं।

उसे कायम रखने के लिए केवल कायम नहीं, बल्कि उसका उचित और स्वभाविक विकास करने के लिए यह जरूरी है कि भारत में लागू शिक्षा के कुछ ढांचे को बदला जाये। बालक का विकास ऐसी शिक्षा द्वारा ही हो सकता है, जो बुनियादी तौर पर सजनात्मकता पर आधारित हो और जिसमें हर प्रवृत्ति और विषय के पीछे व्यक्तित्व के एक्य और समाज के ऐक्य की पुनःस्थापना करने वाली कला दृष्टि हो।

शिक्षा के इस ढांचे में बच्चों की कला का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। ''बच्चे की कला उसकी स्वतन्त्रता का रास्ता है, उसकी शक्तियों की और गुणों की सम्पूर्ण फल प्राप्ति का भी रास्ता है तथा प्रौढ़ जीवन में उसके स्थायी जीवन में उसके स्थायी आनन्द और सुख का भी। कला बच्चे को अपने से बाहर निकालती है, चाहे वह अकेली व्यक्तिगत प्रवृत्ति के रूप में ही शुरू हो, बच्चे का लकीरें मारना ही हो। लेकिन बच्चा लकीरें इसलिए मारता है कि वह अपनी आन्तरिक दुनिया को किसी सहानुभूतिपूर्वक दर्शक को बता सके, अपने माँ–बाप के पास अपने भाव प्रकट करें, जिनमें वह संवेदना चाहता है।

इस स्वातंत्रय जीवन में कला का समन्वय तो होगा ही, साथ–साथ शिक्षक को बच्चे को पूरा–पूरा समझने में मदद मिलेगी। इससे बालक के मनोवैज्ञानिक प्रकार का पता चलेगा और तदनुसार उसकी शिक्षा की योजना बनेगी। इस तरह व्यक्ति की हर शक्ति अपना–अपना ठीक रास्ता पा लेगी। अपनी सम्पूर्ण शक्ति को लेकर व्यक्ति समाज का सृजनशील अंग बनेगा।

हमारी पुरानी भारतीय शिक्षा–प्रणाली में कला और जीवन का यह विच्छेद, जो आज पाया जाता है, नहीं था। शिक्षा का उद्देश्य साधन था। 'ज्ञान' शब्द का अर्थ अधूरा नहीं था। उसमें जानकारी, बोध और विवेक, यहाँ तक कि अहंकार का निराकरण और विनय भी आ जाते थे। विद्यार्थी केवल शास्त्रीय शिक्षण नहीं, बल्कि व्यावहारिक शिक्षण भी पाता था। गुरूकुल में चला गया, तो चूल्हे के लिए जलवान चुनने से लेकर हर तरह की आवश्यक शिक्षा प्राप्त करता था। अपनी वंशीय पृष्ठभूमि के अनुसार उसका शिक्षण होता था। क्षत्रिय हो तो उसे धनुर्विद्या, राजनीति आदि चर्तुषष्ठि–कलाओं में प्रवीण होना पड़ता था। इसी प्रकार जाति और वंश के अनुसार शिक्षा पाकर वह पूरी तैयारी के साथ संसार में प्रवेश करता था। कारीगरों और साधारण नागरिकों की संतान भी पिता के पास रहकर अपने धन्धे की शिक्षा प्राप्त करती थी और अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं का ज्ञान हासिल करती थी। यह शिक्षा अपने में सम्पूर्ण और समन्वित थी।

भारत में विदेशी राज्य के कारण देश का जीवन बिल्कुल विच्छिन्न हो गया। उससे सामाजिक और सांस्कृतिक सभी मूल्य बदल गये। देश के जीवन में और शिक्षा में कोई भी सम्बन्ध नहीं रहा। 'फ्री हैंड' नकल करने को भी शिक्षा में प्रवेश मिला और धीरे–धीरे उसमें अलंकारिक आकारों की नकल करना भी सिखाया जाने लगा। वस्तु पर पड़ी हुई छाया और आलोक की छवि ठीक–ठाक बन लेना भी पाठ्यक्रम का अंग बना। इस पद्धति ने बच्चों के दिलों में कुछ रूचि पैदा नहीं की। धीरे–धीरे इन रूसी वस्तुओं (प्यालों, ग्लासों, घनाकार, पिरामिड आदि) के बदले बच्चों को प्राकृतिक वस्तुओं (जैसे–फल, फूलदान आदि) का चित्र बनाने की अनुमति मिलने लगी। उसमें रंग का काम भी जोड़ दिया गया और आदर्श यह हुआ कि बालक वास्तविक आकारों जैसे चित्र बना सकें। लैंटरिंग, डिजाइनिंग को भी स्थान मिला।

यह सब यूरोप में 100 साल पहले 'प्रोग्रेसिव' माना जाता था, जो आज भी भारतीय की शिक्षा प्रणाली का अंग बना हुआ है। हर विद्यार्थी और शिक्षक जानता है कि बालक को इस शिक्षा में कोई भी रूचि नहीं होती। क्योंकि विषय महत्व का नहीं है और कठिन भी नहीं है, परीक्षा पास करने के लिए अच्छा है, यह मानकर उसे अपना लेते हैं। शायद ही कुछ विद्यार्थी उसमें रूचि में हिस्सा लेते होंगे। इसी तरह ड्राइंग मास्टर बच्चों पर अपने ढंग की चीजों को इतने वर्षों से लादते आये हैं, किन्तु इसी बीच मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शिक्षा में अनेक परिवर्तन हो गये। उसमें अनेक प्रकार के नये–नये प्रयोग हुए हैं। शिक्षा में स्वतन्त्रता का महत्व जर्मनी के फ्रॉयबेल नामक शिक्षा–शास्त्री ने दिखाया है। इसी प्रकार कुछ अगवा शिक्षकों ने बालक की सृजनात्मक शक्ति का दर्शन कराया। कुछ ने यह सिद्ध किया है कि बालक को सख्त मानसिक अनुशासन में रखना हानिकारक होता है।

यह काम तो मनोवैज्ञानिकों ने किया। इसका ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। परन्तु सबसे क्रान्तिकारी काम वियेना के फ्रांस सिजेक ने किया। उन्होंने कला शिक्षा की एक क्रान्तिकारी पद्धति का निर्माण किया। मनोवैज्ञानिक स्वतन्त्रता की दुहाई के बावजूद बच्चे पर अपनी ही योजनायें और अपना ही कार्यक्रम लादते हैं। सिजेक ने सबसे अनोखी बात यह कि बच्चे को इन बातों को पूरा–पूरा बचाया। उन्होंने स्वयं ही कहा : ''मैंने बालकों को मुक्त कराया।'' मैंने उनसे कहा कि ''तुम जो बनाते हो, वह अच्छा है।'' उन्होंने इतने विरोध के बावजूद बालक के प्रति अपनी श्रद्धा और प्रेम को कायम रखा और आखिर यहाँ तक कहा कि ''बालक की कला–कृति की सबसे सुन्दर वस्तु उसकी गलतियाँ है।'' यही सच्ची क्रांति है। सच्ची और शुद्ध स्वतन्त्रता, ऐसी स्वतन्त्रता, जिसमें व्यक्ति अपने मनोवैज्ञानिक प्रकार (साइकोलॉजिकल टाईप) के अनुसार पूरा–पूरा विकास कर सके, कम ही शिक्षक दे सकते हैं।

शिक्षा जगत को सिजेक की देन अद्वितीय है। वे स्वयं अच्छे कलाकार थे, किन्तु ज्यों ही उन्होंने बालक की सृजनात्मक दुनिया का दर्शन किया, वे उसमें रह हो गये। अनेक कष्टों को सहते हुए उन्होंने वियना में बच्चों का एक कला–केन्द्र खोला। शहर के बालक स्वेच्छा से उसमें आते थे।

निष्कर्ष–

मैं निश्चित हूँ कि आज का यह उत्साह इसलिए इतना महत्वपूर्ण है क्योंकि लोग यह अनुभव करते है कि चरित्र निर्माण में कला की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उनका उद्देश्य कुछ भी हो परन्तु यह सत्य है कि वे इस पीढ़ी की सृजनात्मक सजगता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं।

शिक्षा के इस ढांचे में बच्चों की कला का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। ''बच्चे की कला उसकी स्वतन्त्रता का रास्ता है, उसकी शक्तियों की और गुणों की सम्पूर्ण फल प्राप्ति का भी रास्ता है तथा प्रौढ़ जीवन में उसके स्थायी जीवन में उसके स्थायी आनन्द और सुद का भी। कला बच्चे को अपने से बाहर निकालती है।

संदर्भ सूची

1. कला त्रैमासिक, अंक 12, 1981 बाल कला, पृ०सं० 87
2. हर्बर्ट रीड– एजूकेशन फॉर पीस, पृ०सं० 119
3. फ्रायबेल, एजूकेशन फॉर मैन, 115
4. प्रसाद देवी, शिक्षा का वाहन कला, पृ०सं० 131